यह एक नए युग के शुरुआत का अवसर हो सकता है

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और हिन्दुत्व की उसकी सोच ऐसा विषय है जिस पर न जाने कितनी बार कहां-कहां चर्चा हुई है और होती रहेगी। हमारे भारत देश का संस्कार ही ऐसा है जहां शास्त्रार्थ की महान परंपरा अब बहस और वाद-विवाद के रुप में परिणत हुआ है और कुछ मायने में विकृत भी हुआ है। पूर्व राष्ट्रपति डॉ. प्रणब मुखर्जी के संघ के मंच से भाषण देने के कारण संघ अगले कुछ समय तक चर्चा में रहेगा। संघ हम किसे माने ? जो उसके वर्तमान प्रमुख मोहन भागवत कह रहे हैं या उनके पूर्व के संघ के उच्चाधिकारी कह गए हैं उनको या फिर जो लोग संघ से बाहर होते हुए अपनी दृष्टि से उसका वर्णन कर रहे हैं उसे ? दोनों मत हमारे सामने हैं। जब संघ ने पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी को तृतीय वर्ष प्रशिक्षण वर्ग के समापन समारोह में मुख्य अतिथि के रुप में आने का निमंत्रण दिया तो उसका यह उद्देश्य कतई नहीं था कि वे वहां आकर संघ की भाषा बोलेंगे। मोहन भागवत ने अपने भाषण में कहा भी कि संघ संघ है और डॉ. प्रणब मुखर्जी डॉ. प्रणब मुखर्जी हैं। यह सच है कि प्रशिक्षण शिविर हर वर्ष आयोजित होता है और किसी ऐसे व्यक्तित्व को वहां मुख्य अतिथि के रुप में आमंत्रित किया जाता है जो संघ से बाहर के होते हैं। यह एक सामान्य परंपरा है। वो अपनी बात वहां रखते हैं। संयोग से इस बार संघ ने डॉ. प्रणब मुखर्जी को आमंत्रित किया। भारत का वातावरण ऐसा हो गया है कि हम इसे इतने ही सामान्य ढंग से ने ही नहीं सकते। इसलिए इसके पीछे अनेक प्रकार के मंसूबे तलाशे गए। भाजपा की हाल के उपचुनावों के पराजय से जोड़ा गया आदि आदि। अब पता चला है कि संघ ने काफी पहले प्रणब मुखर्जी को आमंत्रित किया था और उन्होंने अपनी स्वीकृति भी काफी पहले दी थी। उस समय तक कर्नाटक चुनाव परिणाम भी नहीं आया था। विविधताओं के देश भारत में विचारधाराएं और मत-मतांतर भी विविध हैं। यही भारत की विशिष्टता है। किंतु कोई आवश्यक नहीं कि सारी विचारधाराएं या मत-मतांतर सकारात्मक और कल्याणकारी सोच से ही पैदा हुए हों। बावजूद इसके संवाद के रास्ते को बाधित करना या उस पर प्रश्न उठाना भारतीय संस्कार नहीं हो सकता। तो जिन लोगों ने प्रणब मुखर्जी के संघ कार्यक्रम में जाने का विरोध किया या उस पर प्रश्न उठाया वो दरअसल, संवाद की सार्थकता और भारतीय संस्कार के विरुद्ध थे। मुखर्जी ने यही तो कहा कि संवाद जरुरी है। समस्याओं के समाधान की समझ बातचीत से ही विकसित होती है।

आज कांग्रेस के नेता जो तर्क दें लेकिन उनके जाने को प्रत्यक्ष-परोक्ष जिस तरह विवाद का विषय बनाया गया वो बिल्कुल अनुचित था। संघ के लोगों ने मुखर्जी की बातचीत को जितने ध्यान से सुना उसका भी

कुछ अर्थ है। वास्तव में मुखर्जी का संघ मंच पर जाना और अपनी बात कहना तथा उसके पूर्व मोहन भागवत का भाषण ऐसा अवसर है जिसे सकारात्मक तरीके से लिया जाए तो यह एक नए युग की शुरुआत सदृश घटना साबित हो सकता है। संघ के बारे में ईमानदार पुनर्विचार की शुरुआत हो सकती है। हर वर्ष ऐसा कार्यक्रम होते हुए भी पूरे देश और देश के बाहर रहने वाले भारतीयों ने जितने ध्यान से इस बार भाषणों को सुना इसके पहले ऐसा कभी नहीं हुआ। ध्यान रखिए, मुखर्जी ने पूरे भाषण में कहीं भी संघ का नाम नहीं लिया। उन्होंने यह कहीं नहीं कहा कि आपका कौन सा विचार सही है या गलत। इससे उन लोगां े को निराशा हुई है जो हमेशा संघ की निंदा करते हैं। उन्होंने राष्ट्र, राष्ट्रवाद और देशभक्ति पर अपनी बात रखी जो विषय उनको बोलने के लिए दिया गया था। भले कोई इसे न स्वीकारे लेकिन सच यही है कि भागवत एवं मुखर्जी के भाषणों में मूल तत्व एक ही था। दोनों के तरीके, शब्दावलियां, उदाहरण आदि अलग-अलग थे, लेकिन अंत मं े पहुंचे एक ही जगह। भारतीय राष्ट्र-राज्य को लेकर हमारे देश में दो मत रहे हैं। संघ भारत को एक प्राचीन राष्ट्र मानता है जब यूरोप में राष्ट्र राज्य का उदय नहीं हुआ था। उस राष्ट्र का आधार संस्कृति को मानता है। महात्मा गांधी की भारतीय राष्ट्र संबंधी सोच यही थी। किंतु गांधी जी के समय भी कांग्रेस के अंदर इस सोच से भिन्न मत रखने वाले लोग थे जो मानते थे कि भारत राष्ट्र निर्माण की अवस्था में है और अंग्रेजों का योगदान इसमें है। मुखर्जी ने अपने भाषण में साफ कहा कि यूरोप में राष्ट्र-राज्य का उदय 17 वीं सदी की परिघटना है जबकि भारत का अस्तित्व एक राष्ट्र के रुप में सदियों से रहा है। उन्होंने विदेशी यात्रियों के यहां आने तथा भारत के वर्णन को अपने कथन के प्रमाण के रुप में प्रस्तुत किया। यह एक बड़ी बात है। दुर्भाग्य से हमें संघ का विरोध करना है इसलिए वो जो कुछ भी कहता है उसका विरोध करो की भावना में हम भारतीय राष्ट्र के इस ध्रुव सत्य को भी विवाद का विषय बना चुके हैं। जो लोग कह रहे हैं कि प्रणब ने संघ को उसके मंच से आईना दिखाया वे कम से कम इस सच को तो स्वीकार लें। इस सच को स्वीकारने मात्र से भारत के संदर्भ में कितना कुछ बदल जाएगा इसकी कल्पना करिए। अंग्रेजों और अपने यहां के स्वनामधन्य इतिहासकारों द्वारा लिखित पूरा इतिहास बदल जाएगा।

मुखर्जी ने भारतीय राष्ट्रीयता में विविधता और बहुलता की बात की। भागवत ने भी अपने भाषण में कहा कि विविधता में जो अंतर्निहित एकता है उसे स्वीकार कर आगे बढ़ना होगा। विविधता होना समृद्धि की बात है। दिखने वाली विविधता एक ही एकता का है। उस एकता का भाव रखकर हम सब एक हैं इसका दर्शन समय-समय पर होते रहना चाहिए। तो अंतर कहां है ? हिन्दुत्व का दर्शन भी यही है। जिसे हम हिन्दू धर्म कहते हैं उसमें अनेक पंथ पैदा हुए, कितने विलीन हो गए और कितने आज भी कायम हैं। किंतु सबके मूल में एक ही बात है, उस परमतत्व को प्राप्त करना। उसी को केन्द्र में रखकर भारतीय राष्ट्र की सारी व्यवस्था निर्मित हुई। मुखर्जी ने संसद के द्वार संख्या छः परं लिखे कौटिल्य के श्लोक ‘प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां तु हिते हितम, नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम’ का जिक्र करते हुए कहा कि प्रजा के हित और सुख में ही राजा का सुख निहित है। उनका कहना था कि जिसे आधुनिक लोकतंत्र कहते हैं उसके पैदा होने के पहले ही हमारे यहां यह विचार प्रचलित हो गया था। प्रणब ने हिन्दुत्व का नाम नहीं लिया। लेकिन यह दर्शन कहां से आया ? उसी हिन्दुत्व से, भारतीय दर्शन से जिसे आज फासीवाद का पर्याय बता दिया जाता है। मुखर्जी ने भी यह तो कहा ही कि भारत से होकर हिंदुत्व के प्रभाव वाला बौध धर्म मध्य एशिया, पूर्वी एशिया,चीन तक पहुंचा। प्रणव मुखर्जी ने कहा कि धर्म, मतभेद और असिहष्णुता से भारत को परिभाषित करने का हर प्रयास देश को कमजोर बनाएगा।

उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय पहचान और भारतीय राष्ट्रवाद सार्वभौमिकता और सह-अस्तित्व से पैदा हुआ है। उन्होंने सार्वजनिक बहस में बढ़ती हिंसा की आलोचना की। भागवत ने क्या कहा ? हम सब भारत माता के पुत्र हैं। अपने अंत:करण से भेदों को तीलांजलि देकर देश के लिए पुरुषार्थ करने के लिए तैयार हो जाएं तो सारे विचार सारे मत एक हो जाते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि किस मत से हमें कोई परहेज नहीं है। दुश्मन कोई नहीं है। सबके पूर्वज समान हैं। सबके जीवन के उपर भारतीय संस्कृति के प्रभाव स्पष्ट रुप से देखने को मिलते हैं। अपने को संकुचित भेद छोड़कर सबकी विविधताओं का सम्मान करते हुए संघ सबको जोड़ने का काम करता है। हम समाज में नहीं पूरे समाज को संगठित करने का काम कर रहे है। संघ में एक विशिष्ट व्यवहार है और वह है सौहार्द्र
का सौमन्वस्य का सबको समझने का। इसी को लोकतांत्रिक सोच कहते हैं। विचार कुछ भी हो, देश के सामने जितनी भी समस्याएं हैं उनके हल के बारे में भी विचार कुछ भी हो जातिपांति पंथ संप्रदाय जो भी हो राष्ट्र के लिए हमारा आचरण कैसा हो यह विचार करके अपने आचरण उदाहरण के रुप में प्रस्तुत करने वाला होना चाहिए। भागवत ने शक्ति की भी बात की। उन्होंने कहा कि किसी भी कार्य को करने के लिए शक्ति चाहिए। शक्ति सबको मिलकर काम करने में है। लेकिन शक्ति को शील का आधार नहीं तो वह शक्ति दानवी शक्ति हो जाएगी। शक्ति से दूसरां ें को पीड़ा कौन देते हैं ? दुष्ट लोग देते हैं। हम शक्ति का उपयोग रक्षण के लिए करते हैं। शक्ति को शील का आधार चाहिए बिना उसके अनियंत्रित शक्ति विनाश करती है। अपना काम सज्जन शक्ति को संगठित करने का है। यह हिंसा और असहिष्णुता का निषेध ही तो है। यानी जो शक्ति हम पैदा करते हैं वो शीलयुक्त है, नियंत्रित है और यह हिन्दुत्व से, भारतीय संस्कृति से मिला है।

अब संघ को हम कैसे समझें ? भागवत ने कहा कि आप हमें प्रत्यक्ष देखिए। जो कुछ मैंने कहा वो संघ में है कि नहीं इसकी पड़ताल करिए। अगर लगता है कि वैसा है तो सहभागी करिए। संध को अंदर से परखिए। यहां सब आ सकते हें, सब परख सकते हैं। परखकर भाव बना सकते है। हम जो हैं वहीं करते हैं। सबके प्रति सद्भाव रखकर सबके प्रति सम्मान रखकर चल रहे हैं। तो यह आह्वान है बाहर से विचार बनाने की बजाय निकट आकर देखिए और फिर अपना मत तय करिए। क्या हम आप इसके लिए तैयार हैं ?

अवधेश कुमार, ई:30,
गणेश नगर, पांडव नगर कॉम्प्लेक्स,
दिल्ली:110092,
दूरभाष:01122483408,
9811027208